Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

12

समकालीन वैश्वीकरण के दौर में हिंदी साहित्य में भारतीय अस्मिता का संकट और चुनौतियाँ

डॉ. शिवानंद एच. कोली
सहायक निदेशक (राजभाषा अनुभाग)
राष्ट्रीय रेशमकीट बीज संगठन केन्द्रीय रेशम बोर्ड बेंगलुरू

सारांश (Abstract): समकालीन वैश्वीकरण के दौर ने भारतीय समाज की सांस्कृतिक, भाषाई और वैचारिक संरचनाओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया है, जिसके परिणामस्वरूप "भारतीय अस्मिता" के समक्ष एक गहरा संकट उत्पन्न हुआ है। हिंदी साहित्य, जो समय और समाज की संवेदनाओं का सशक्त दस्तावेज रहा है, इस संकट को न केवल प्रतिबिंबित करता है, बल्कि उसकी आलोचनात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध आलेख में वैश्वीकरण के प्रभावों के संदर्भ में हिंदी साहित्य में भारतीय अस्मिता के संकट का बहुआयामी विश्लेषण किया गया है। इसमें विशेष रूप से सांस्कृतिक क्षरण, भाषाई संकरता (हिंग्लिश का प्रसार), पारंपरिक मूल्यों का विघटन तथा पहचान के द्वंद्व जैसे पक्षों पर विचार किया गया है। उदाहरणस्वरूप समकालीन हिंदी उपन्यासों और कथाओं में महानगरीय जीवन, उपभोक्तावाद तथा व्यक्तिवाद के बढ़ते प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो भारतीय जीवन-दृष्टि से विचलन को दर्शाते हैं।

आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित किया है, वहीं दूसरी ओर "सांस्कृतिक समरूपीकरण" (Cultural Homogenization) के माध्यम से स्थानीय अस्मिताओं को हाशिए पर भी धकेला है। इस संदर्भ में यह कथन महत्वपूर्ण है कि— "वैश्वीकरण केवल आर्थिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्संरचना का भी माध्यम है"।, जो भारतीयता के पारंपरिक स्वरूप को चुनौती देता है। फिर भी, हिंदी साहित्य इस संकट के बीच प्रतिरोध और पुनर्निर्माण की भूमिका निभाता है। स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्शों के माध्यम से यह एक अधिक समावेशी और बहुलतावादी भारतीय अस्मिता का निर्माण करता है। इस प्रकार, यह आलेख यह स्थापित करता है कि हिंदी साहित्य न केवल भारतीय अस्मिता के संकट को उजागर करता है, बल्कि उसके संरक्षण और पुनर्परिभाषा की दिशा में भी सक्रिय भूमिका निभाता है।

मुख्य शब्द (Keywords) :वैश्वीकरण, हिंदी साहित्य, भारतीय अस्मिता, सांस्कृतिक संकट, समरूपीकरण, बाजारवाद, भाषा संकट, बहुलतावादी, पुनर्परिभाषा

1. प्रस्तावना: इक्कीसवीं सदी का वर्तमान समय वैश्वीकरण का समय है, जिसने विश्व को आर्थिक, सांस्कृतिक और संचारात्मक स्तर पर अभूतपूर्व रूप से जोड़ दिया है। उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों के परिणामस्वरूप विश्व एक "वैश्विक ग्राम" में परिवर्तित होता दिखाई देता है। इस परिवर्तन का प्रभाव केवल आर्थिक संरचनाओं तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने समाज, संस्कृति, भाषा और मानवीय मूल्यों को भी गहराई से प्रभावित किया है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह परिवर्तन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारत एक बहुलतावादी सांस्कृतिक परंपरा वाला देश रहा है, जहाँ विविधता में एकता की अवधारणा सदियों से विद्यमान है। "भारतीय अस्मिता" इसी बहुलता, सहिष्णुता, लोकपरंपराओं और नैतिक मूल्यों के समन्वय से निर्मित होती है। किंतु वैश्वीकरण के प्रभाव से यह अस्मिता आज नए प्रकार के संकटों और चुनौतियों का सामना कर रही है।

हिंदी साहित्य, जो समाज की संवेदना और चेतना का सशक्त माध्यम है, इस परिवर्तनशील युग की जटिलताओं को अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। समकालीन हिंदी साहित्य में जहाँ एक ओर शहरीकरण, उपभोक्तावाद और व्यक्तिवाद की प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आई हैं, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक मूल्यों, लोकसंस्कृति और सामूहिकता के क्षरण की चिंता भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उदाहरण के रूप में समकालीन हिंदी उपन्यासों और कहानियों में महानगरीय जीवन की विडंबनाएँ, पारिवारिक संबंधों का विघटन तथा सांस्कृतिक द्वंद्व प्रमुख विषय बनकर उभरे हैं।आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो वैश्वीकरण ने भारतीय समाज को एक ओर नई संभावनाएँ प्रदान की हैं, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक समरूपीकरण और बाजारवाद के माध्यम से स्थानीय अस्मिताओं को चुनौती भी दी है। इस संदर्भ में यह कथन समीचीन प्रतीत होता है कि—"वैश्वीकरण ने मनुष्य को विश्व नागरिक तो बनाया है, पर उसकी स्थानीय पहचान को संकट में भी डाला है"। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य समकालीन वैश्वीकरण के दौर में हिंदी साहित्य में भारतीय अस्मिता के संकट और उससे उत्पन्न चुनौतियों का विश्लेषण करना है, ताकि इस परिवर्तनशील युग में भारतीयता के स्वरूप को समझा जा सके।

2. भारतीय अस्मिता: स्वरूप और अवधारणा: भारतीय अस्मिता एक बहुआयामी और बहुलतावादी अवधारणा है, जो भारत की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और आध्यात्मिक परंपराओं के समन्वय से निर्मित होती है। यह केवल एक स्थिर पहचान नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न जातीय, भाषाई, धार्मिक और सांस्कृतिक तत्व समाहित होते हैं। भारतीय अस्मिता का मूल स्वर "विविधता में एकता" की भावना में निहित है, जो भारतीय समाज की विशिष्ट पहचान को निर्धारित करता है।

1. भारतीय अस्मिता का स्वरूप

भारतीय अस्मिता के स्वरूप को निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है—

(क) सांस्कृतिक बहुलता और समन्वय:भारत की संस्कृति विभिन्न परंपराओं, धर्मों और जीवन-शैलियों का संगम है। यहाँ आर्य, द्रविड़, आदिवासी, बौद्ध, जैन, इस्लामी और पाश्चात्य प्रभावों का समन्वय देखने को मिलता है।

उदाहरण: हिंदी साहित्य में मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास *गोदान* में ग्रामीण भारतीय जीवन, सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक मूल्यों का यथार्थ चित्रण भारतीय अस्मिता के इस बहुलतावादी स्वरूप को प्रस्तुत करता है।

(ख) लोकजीवन और परंपराएँ - भारतीय अस्मिता का महत्वपूर्ण आधार लोकसंस्कृति है, जिसमें लोकगीत, लोककथाएँ, रीति-रिवाज और त्यौहार शामिल हैं।

उदाहरण:फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास *मैला आँचल* में मिथिला क्षेत्र की लोकसंस्कृति, बोली और सामाजिक जीवन का सजीव चित्रण भारतीय अस्मिता की जड़ों को मजबूत करता है।

(ग) आध्यात्मिकता और नैतिक मूल्य - भारतीय अस्मिता का एक प्रमुख आयाम आध्यात्मिकता और नैतिकता है, जिसमें सत्य, अहिंसा, करुणा और सहिष्णुता जैसे मूल्य शामिल हैं।

उदाहरण:महात्मा गांधी के विचारों और उनके जीवन-दर्शन ने हिंदी साहित्य को गहराई से प्रभावित किया है, जहाँ सत्य और अहिंसा भारतीय अस्मिता के केंद्रीय तत्व के रूप में उभरते हैं।

(घ) भाषा और साहित्य - भाषा भारतीय अस्मिता की वाहक है, और हिंदी साहित्य ने इस अस्मिता को संरक्षित और अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

उदाहरण:रामधारी सिंह दिनकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव और भारतीयता का ओजस्वी स्वर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

2. भारतीय अस्मिता की अवधारणा

भारतीय अस्मिता की अवधारणा को विभिन्न विद्वानों और साहित्यकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्यायित किया है। आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय अस्मिता एक “संवादात्मक पहचान” (Dialogic Identity) है, जो निरंतर परिवर्तनशील सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ विकसित होती रहती है। यह न तो पूर्णतः परंपरागत है और न ही पूर्णतः आधुनिक, बल्कि दोनों के बीच एक संतुलन स्थापित करती है।इस संदर्भ में यह कथन उल्लेखनीय है—“भारतीय अस्मिता किसी एकरूपता का नाम नहीं, बल्कि विविधताओं के समन्वित सह-अस्तित्व का जीवंत रूप है”[1]।

3. समकालीन संदर्भ में भारतीय अस्मिता- वैश्वीकरण के दौर में भारतीय अस्मिता के स्वरूप में परिवर्तन देखा जा रहा है।

- पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक जीवनशैली के बीच द्वंद्व
- स्थानीय और वैश्विक पहचान का संघर्ष
- सांस्कृतिक समरूपीकरण का खतरा

उदाहरण:समकालीन हिंदी उपन्यासों में महानगरीय जीवन, प्रवासी अनुभव और सांस्कृतिक विस्थापन जैसे विषय भारतीय अस्मिता के बदलते स्वरूप को दर्शाते हैं।

4. आलोचनात्मक विश्लेषण - भारतीय अस्मिता को लेकर दो प्रमुख दृष्टिकोण सामने आते हैं—

1. **संरक्षणवादी दृष्टिकोण** – जो परंपरागत मूल्यों और सांस्कृतिक शुद्धता को बनाए रखने पर बल देता है।
2. **परिवर्तनवादी दृष्टिकोण** – जो अस्मिता को एक गतिशील प्रक्रिया मानते हुए नए प्रभावों को स्वीकार करता है।

हिंदी साहित्य इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है, जहाँ परंपरा और आधुनिकता का समन्वय दिखाई देता है। भारतीय अस्मिता एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है, जो निरंतर परिवर्तनशील सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में विकसित होती रहती है। हिंदी साहित्य ने इस अस्मिता को न केवल अभिव्यक्त किया है, बल्कि उसे संरक्षित और समृद्ध करने का कार्य भी किया है।

3. वैश्वीकरण और उसका प्रभाव: समकालीन युग में वैश्वीकरण (Globalization) एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में उभरा है, जिसने विश्व की आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और वैचारिक संरचनाओं को गहराई से प्रभावित किया है। 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले। हिंदी साहित्य ने इन परिवर्तनों को संवेदनशीलता और आलोचनात्मक दृष्टि के साथ अभिव्यक्त किया है।

1. वैश्वीकरण : अवधारणा और स्वरूप

वैश्वीकरण का आशय विश्व के विभिन्न देशों के बीच आर्थिक, सांस्कृतिक और तकनीकी आदान-प्रदान की तीव्र प्रक्रिया से है, जिसके माध्यम से विश्व एक “वैश्विक ग्राम” में परिवर्तित हो जाता है। इस संदर्भ में यह कथन उल्लेखनीय है—“वैश्वीकरण केवल बाजार का विस्तार नहीं, बल्कि संस्कृति, संचार और विचारों के वैश्विक प्रवाह की प्रक्रिया है”[1]।

2. वैश्वीकरण का आर्थिक प्रभाव

आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में बाजारवाद (Market Economy) का विस्तार हुआ। इससे उपभोक्तावाद और प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति बढ़ी।

उदाहरण:समकालीन हिंदी उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन, उपभोक्तावादी संस्कृति और आर्थिक असमानता का चित्रण प्रमुखता से किया गया है। उदय प्रकाश की कहानियों में बाजारवादी व्यवस्था के कारण उत्पन्न सामाजिक विडंबनाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

3. वैश्वीकरण का सांस्कृतिक प्रभाव - वैश्वीकरण के कारण पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय जीवनशैली पर बढ़ा है। खान-पान, पहनावा, भाषा और जीवन-मूल्यों में परिवर्तन देखा जा सकता है।

उदाहरण:निर्मल वर्मा की रचनाओं में सांस्कृतिक विस्थापन और अस्तित्वगत संकट का गहरा चित्रण मिलता है, जो वैश्वीकरण के सांस्कृतिक प्रभावों को उजागर करता है।

आलोचनात्मक रूप से यह कहा गया है—"वैश्वीकरण ने सांस्कृतिक विविधता को सीमित कर एकरूपता की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है"[2]।

4. वैश्वीकरण का भाषाई प्रभाव

अंग्रेज़ी भाषा का वर्चस्व बढ़ने से हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के सामने चुनौती उत्पन्न हुई है। "हिंग्लिश" का बढ़ता प्रचलन भाषा की शुद्धता और मौलिकता को प्रभावित कर रहा है।

उदाहरण:समकालीन मीडिया, विज्ञापन और साहित्य में हिंदी-अंग्रेज़ी मिश्रित भाषा का प्रयोग तेजी से बढ़ा है, जो भाषाई परिवर्तन का संकेत है।

5. वैश्वीकरण का सामाजिक प्रभाव

वैश्वीकरण ने पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित किया है। संयुक्त परिवार व्यवस्था का विघटन और व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति का विकास इसके प्रमुख परिणाम हैं।

उदाहरण:मन्नू भंडारी की रचनाओं में बदलते पारिवारिक संबंधों और सामाजिक मूल्यों का यथार्थ चित्रण मिलता है, जो वैश्वीकरण के सामाजिक प्रभावों को दर्शाता है।

6. आलोचनात्मक विश्लेषण: वैश्वीकरण के प्रभाव को लेकर दो प्रमुख दृष्टिकोण सामने आते हैं—

1. **सकारात्मक दृष्टिकोण** –
    - वैश्विक संवाद और अवसरों का विस्तार
    - तकनीकी विकास और ज्ञान का प्रसार
2. **नकारात्मक दृष्टिकोण** –
    - सांस्कृतिक समरूपीकरण
    - स्थानीय अस्मिता का क्षरण
    - बाजारवाद का वर्चस्व

इस संदर्भ में यह कथन महत्वपूर्ण है—"वैश्वीकरण ने मनुष्य को उपभोक्ता में बदल दिया है, जहाँ पहचान भी बाजार द्वारा निर्धारित होती है"*[3]।

7. हिंदी साहित्य में अभिव्यक्ति

हिंदी साहित्य ने वैश्वीकरण के प्रभावों को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है—

- महानगरीय जीवन की जटिलताएँ
- सांस्कृतिक द्वंद्व और विस्थापन
- उपभोक्तावाद और मूल्य-संकट

उदाहरण:समकालीन हिंदी कथाकारों की रचनाओं में "अकेलापन", "पहचान का संकट" और "सांस्कृतिक विघटन" प्रमुख विषय बनकर उभरे हैं।वैश्वीकरण ने भारतीय समाज और हिंदी साहित्य को गहराई से प्रभावित किया है। यह प्रभाव बहुआयामी है—आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक। हिंदी साहित्य इन परिवर्तनों को न केवल प्रतिबिंबित करता है, बल्कि उनकी आलोचनात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है।

4. हिंदी साहित्य में भारतीय अस्मिता का संकट:समकालीन वैश्वीकरण के प्रभावों ने हिंदी साहित्य में भारतीय अस्मिता के स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। यह संकट केवल सांस्कृतिक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि भाषा, मूल्य और पहचान के स्तर पर भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। हिंदी साहित्य ने इन परिवर्तनों को न केवल अभिव्यक्त किया है, बल्कि उनकी आलोचनात्मक पड़ताल भी की है।

4.1 सांस्कृतिक संकट

वैश्वीकरण के प्रभाव से भारतीय लोकसंस्कृति, लोकपरंपराएँ और पारंपरिक जीवनशैली धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही हैं। ग्रामीण जीवन, जो हिंदी साहित्य का आधार रहा है, उसकी जगह महानगरीय जीवन की जटिलताएँ, अकेलापन और विस्थापन प्रमुख विषय बन गए हैं।

उदाहरण:काशीनाथ सिंह के उपन्यास *काशी का अस्सी* में बदलते शहरी परिवेश और सांस्कृतिक संक्रमण का सजीव चित्रण मिलता है, जहाँ पारंपरिक बनारसी संस्कृति पर आधुनिकता और बाजारवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

आलोचनात्मक दृष्टि से यह कहा गया है—“वैश्वीकरण ने स्थानीय संस्कृतियों को हाशिए पर डालकर एक उपभोक्तावादी संस्कृति को केंद्र में स्थापित किया है”*[1]।

4.2 भाषा संकट- हिंदी भाषा के सामने आज एक गंभीर संकट उपस्थित है। अंग्रेज़ी के बढ़ते प्रभाव और “हिंग्लिश” के प्रचलन ने हिंदी की शुद्धता, संरचना और अभिव्यक्ति को प्रभावित किया है।

उदाहरण:समकालीन हिंदी लेखन, विशेषकर मीडिया और विज्ञापन जगत में हिंदी-अंग्रेज़ी मिश्रित भाषा का व्यापक प्रयोग देखा जा सकता है। रघुवीर सहाय ने भाषा के इस संकट की ओर संकेत करते हुए आधुनिक संचार माध्यमों में भाषा के बदलते स्वरूप पर चिंता व्यक्त की है।

यह कथन उल्लेखनीय है—“भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति और अस्मिता की वाहक होती है”*[2]।

4.3 मूल्य संकट-भारतीय समाज में पारंपरिक नैतिक मूल्यों—सहिष्णुता, सामूहिकता, परिवार-केन्द्रित जीवन—का स्थान उपभोक्तावाद, प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिवाद ने ले लिया है।

उदाहरण:मृदुला गर्ग की रचनाओं में आधुनिक जीवन की जटिलताएँ, नैतिक द्वंद्व और बदलते सामाजिक मूल्यों का गहन चित्रण मिलता है, जो इस मूल्य-संकट को उजागर करता है।

आलोचनात्मक रूप से यह कहा गया है—“उपभोक्तावाद ने मनुष्य को वस्तु में परिवर्तित कर दिया है, जहाँ संबंध भी उपयोगिता के आधार पर निर्धारित होते हैं”*[3]।

4.4 पहचान का संकट- नई पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक पहचान को लेकर गहरे द्वंद्व का सामना कर रही है। वैश्विक संस्कृति और स्थानीय परंपराओं के बीच संतुलन स्थापित करना एक बड़ी चुनौती बन गया है।

उदाहरण:गीतांजलि श्री के उपन्यासों में स्त्री, समाज और बदलती पहचान के प्रश्नों को गहराई से उठाया गया है, जहाँ व्यक्ति अपनी जड़ों और आधुनिक जीवन के बीच संतुलन खोजता है।

इस संदर्भ में यह कथन महत्वपूर्ण है—“वैश्वीकरण के युग में व्यक्ति की पहचान बहुस्तरीय हो गई है, जहाँ वह एक साथ स्थानीय और वैश्विक दोनों होता है”*[4]।हिंदी साहित्य में भारतीय अस्मिता का संकट बहुआयामी है, जिसमें सांस्कृतिक, भाषाई, नैतिक और पहचान संबंधी समस्याएँ शामिल हैं। यह संकट वैश्वीकरण की देन है, लेकिन साहित्य इन चुनौतियों को रचनात्मक रूप में प्रस्तुत कर समाधान की दिशा भी इंगित करता है।

5. प्रमुख चुनौतियाँ: समकालीन वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य अनेक जटिल चुनौतियों का सामना कर रहा है। ये चुनौतियाँ न केवल साहित्य की विषयवस्तु और स्वरूप को प्रभावित करती हैं, बल्कि भारतीय अस्मिता की अभिव्यक्ति और संरक्षण पर भी गहरा प्रभाव डालती हैं। हिंदी साहित्य ने इन चुनौतियों को संवेदनशीलता और आलोचनात्मक दृष्टि के साथ अभिव्यक्त किया है।

5.1 बाजारवाद का प्रभाव

वैश्वीकरण के साथ बाजारवाद (Marketism) का प्रभाव अत्यधिक बढ़ा है, जिसके कारण साहित्य अब केवल सृजनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रहा, बल्कि एक “उत्पाद” के रूप में भी देखा जाने लगा है। प्रकाशन उद्योग, पुरस्कारों की राजनीति और लोकप्रियता की दौड़ ने साहित्य के उद्देश्य और गुणवत्ता को प्रभावित किया है।

उदाहरण:उदय प्रकाश की कहानियों में बाजारवादी व्यवस्था के कारण उत्पन्न सामाजिक असमानता और मानवीय संवेदनाओं के क्षरण का चित्रण मिलता है।

आलोचनात्मक दृष्टि से यह कहा गया है—“बाजार ने साहित्य को उपभोग की वस्तु बना दिया है, जहाँ मूल्य की जगह बिक्री महत्वपूर्ण हो गई है”*[1]।

5.2 सांस्कृतिक समरूपीकरण

वैश्वीकरण के प्रभाव से विभिन्न संस्कृतियों के बीच अंतर कम होता जा रहा है, जिससे एक प्रकार की सांस्कृतिक एकरूपता (Homogenization) विकसित हो रही है। यह प्रक्रिया भारतीय संस्कृति की विशिष्टता और विविधता के लिए चुनौतीपूर्ण है।

उदाहरण:निर्मल वर्मा की रचनाओं में सांस्कृतिक विस्थापन और पश्चिमी प्रभाव के कारण उत्पन्न मानसिक द्वंद्व को गहराई से व्यक्त किया गया है।

इस संदर्भ में यह कथन महत्वपूर्ण है—“वैश्वीकरण विविधताओं को समेटने के बजाय उन्हें एकरूपता में बदलने की प्रवृत्ति रखता है”*[2]।

5.3 पाठक वर्ग में परिवर्तन-डिजिटल युग में सूचना और मनोरंजन के नए माध्यमों—इंटरनेट, सोशल मीडिया, वेब-सिरीज़ आदि—के प्रसार से पाठकों की रुचि और पढ़ने की आदतों में व्यापक परिवर्तन आया है। गंभीर और चिंतनशील साहित्य के स्थान पर त्वरित और हल्के मनोरंजन की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिससे साहित्य के पारंपरिक पाठक वर्ग में कमी देखी जा रही है।

उदाहरण: आज के युवा वर्ग में साहित्य के स्थान पर दृश्य माध्यमों (Visual Media) की ओर झुकाव अधिक देखा जा रहा है, जो साहित्यिक संवेदनशीलता के विकास में बाधा उत्पन्न कर सकता है।

5.4 वैचारिक विखंडन

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री, दलित, आदिवासी और उत्तर-आधुनिक विमर्शों का तीव्र विकास हुआ है। ये विमर्श जहाँ एक ओर हाशिए के वर्गों को आवाज़ देते हैं, वहीं दूसरी ओर साहित्य में एक प्रकार का वैचारिक विखंडन भी उत्पन्न करते हैं।

उदाहरण: ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा *जूठन* दलित अस्मिता के प्रश्न को केंद्र में लाती है, जो मुख्यधारा की भारतीय अस्मिता की अवधारणा को चुनौती देती है।

आलोचनात्मक दृष्टि से यह कहा गया है—"विमर्शों की बहुलता साहित्य को समृद्ध करती है, किंतु एक समग्र दृष्टि के अभाव में विखंडन की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है"*[3]।

समकालीन हिंदी साहित्य के सामने उपस्थित ये चुनौतियाँ उसकी दिशा और स्वरूप को प्रभावित कर रही हैं। बाजारवाद, सांस्कृतिक समरूपीकरण, पाठक वर्ग में परिवर्तन और वैचारिक विखंडन जैसे कारक भारतीय अस्मिता के समग्र स्वर को कमजोर कर सकते हैं। फिर भी, साहित्य इन चुनौतियों के बीच नए विमर्शों और संभावनाओं के माध्यम से अपनी प्रासंगिकता बनाए रखता है।

6. हिंदी साहित्य की भूमिका और संभावनाएँ

इन संकटों के बावजूद हिंदी साहित्य भारतीय अस्मिता को बचाने और पुनर्निर्मित करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है—

- लोकसंस्कृति का पुनर्स्मरण और संरक्षण
- स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श के माध्यम से समावेशी अस्मिता
- परंपरा और आधुनिकता का संतुलन
- डिजिटल माध्यमों के जरिए वैश्विक स्तर पर हिंदी का प्रसार

निष्कर्ष: समकालीन वैश्वीकरण के दौर में हिंदी साहित्य में भारतीय अस्मिता का संकट एक जटिल और बहुआयामी परिघटना के रूप में उभरकर सामने आया है। यह संकट केवल सांस्कृतिक या भाषाई स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक, नैतिक और वैचारिक स्तरों पर भी गहराई से प्रभाव डालता है। वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर भारतीय समाज को वैश्विक परिप्रेक्ष्य से जोड़ा है, वहीं दूसरी ओर उसने स्थानीय परंपराओं, सांस्कृतिक मूल्यों और भाषाई शुद्धता को चुनौती भी दी है।

हिंदी साहित्य ने इस परिवर्तनशील युग की जटिलताओं को संवेदनशीलता और आलोचनात्मक दृष्टि के साथ अभिव्यक्त किया है। समकालीन रचनाओं में सांस्कृतिक विघटन, उपभोक्तावाद, पहचान का संकट और पारंपरिक मूल्यों के क्षरण जैसे विषय प्रमुखता से उभरकर आए हैं। यह स्पष्ट होता है कि साहित्य केवल इन संकटों का दर्पण नहीं है, बल्कि वह उनके कारणों और परिणामों की गहन पड़ताल भी करता है।

आलोचनात्मक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने भारतीय अस्मिता को एक ओर संकटग्रस्त किया है, तो दूसरी ओर उसे पुनर्परिभाषित करने का अवसर भी प्रदान किया है। समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्शों के माध्यम से एक अधिक समावेशी और बहुलतावादी भारतीयता का निर्माण हो रहा है, जो पारंपरिक अस्मिता की सीमाओं को विस्तृत करता है।

अतः कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य इस संक्रमणकालीन युग में भारतीय अस्मिता के संरक्षण, पुनर्निर्माण और पुनर्परिभाषा की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह साहित्य न केवल संकट को अभिव्यक्त करता है, बल्कि भविष्य की संभावनाओं और दिशा का भी संकेत देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामविलास शर्मा, *भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1992, पृ. 45।
2. मुंशी प्रेमचंद, *गोदान*, नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, 2007, पृ. 112–115।
3. फणीश्वरनाथ रेणु, *मैला आँचल*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ. 67–72।
4. महात्मा गांधी, *सत्य के प्रयोग*, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन, 2008, पृ. 98–102।
5. रामधारी सिंह दिनकर, *संस्कृति के चार अध्याय*, पटना: उदयाचल प्रकाशन, 2010, पृ. 54–60।
6. सच्चिदानंद सिन्हा, *वैश्वीकरण और भारतीय समाज*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2010, पृ. 23।
7. नामवर सिंह, *आलोचना के बहाने*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012, पृ. 78।
8. प्रभा खेतान, *बाजार के बीच: बाजार के खिलाफ*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2004, पृ. 45।
9. नामवर सिंह, *आलोचना के बहाने*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012, पृ. 82।
10. रामविलास शर्मा, *भाषा और समाज*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1999, पृ. 56।
11. प्रभा खेतान, *बाजार के बीच: बाजार के खिलाफ*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2004, पृ. 52।
12. सच्चिदानंद सिन्हा, *वैश्वीकरण और भारतीय समाज*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2010, पृ. 91।
13. प्रभा खेतान, *बाजार के बीच: बाजार के खिलाफ*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2004, पृ. 61।
14. नामवर सिंह, *आलोचना के बहाने*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012, पृ. 90।
15. सच्चिदानंद सिन्हा, *वैश्वीकरण और भारतीय समाज*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2010, पृ. 105।